

अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान पत्रिका

શાબ્દ વિધાન

प्रमोद शर्मा



शब्द विधान

अंक - 3 (I)

अप्रैल-जून, 2017

ISSN : 2394 - 0670

UGC Approved Sr. No. 64405



अकादमिक प्रतिभा

नई दिल्ली - 110059 (भारत)

अस्मितावादी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में स्वानुभूति बनाम सहानुभूति

— मनोज कुमार

— प्रो.चन्दा बैन

वर्तमान समय में दलित विमर्श के केन्द्र में स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न एक गंभीर सैद्धान्तिक मुद्दा है। अगर देखा जाए तो दलितवादी लेखन के सन्दर्भ में दलित लेखक और गैर दलित लेखकों के बीच उपरोक्त प्रश्न को लेकर द्वन्द्व की स्थिति रही है। इन्हीं के बीच दलित लेखकों के द्वारा पूर्व की हिन्दी साहित्य की आलोचना की पद्धति को चुनौती देते हुए, एक वैकल्पिक मूल्यांकन पद्धति को स्थापित करने की कोशिश की जा रही है, जिसमें पूछा जा रहा है कि क्या गैर दलितों के दलित लेखन में सहानुभूति का स्तर उतना प्रमाणिक हो सकता है, जितना कि एक दलित का भोगा हुआ सच। गैर दलित लेखकों का प्रश्न है कि क्या दलितों की समस्याओं को दलित ही समझ सकता है? क्या दलित लेखन वह नहीं हो सकता, जो गैर दलितों द्वारा लिखा जाता रहा है। इस बिन्दु के सन्दर्भ में दलित आलोचक कँवल भारती कहते हैं कि—“दलित समस्या पर गैर दलित लिख सकते हैं। उन्होंने लिखा भी है और लिख भी रहे हैं। पर सवाल अनुभूतियों और चिन्तन का है। दलित जीवन की पीड़ा की जैसी अनुभूति एक दलित को सकती है, वैसी एक गैर दलित को नहीं हो सकती।”¹ कँवल भारती का कहना है कि दलित साहित्य गैर दलित भी लिख सकता है। लेकिन दलित की अस्मिता, शोषण एवं पीड़ा को एक दलित ही अच्छी तरह से अनुभूति कर सकता है गैर दलित नहीं। शिव कुमार मिश्र के शब्दों में—“दलित साहित्य की संज्ञा उसी साहित्य को दी जायगी, जो जन्मना दलित रचनाकार द्वारा रचा गया हो, उस लेखन को नहीं, जो भले ही दलित जीवन—सन्दर्भों से जुड़ा लेखन हो परन्तु जिसके लेखक गैर दलित हों।”² दलित लेखकों का कहना है कि दलित की समस्याओं, अस्मिता, अधिकार, शोषण, पीड़ा इत्यादि पहलुओं को एक दलित की अच्छी तरह से समझ सकता है क्योंकि अनुभूति की महत्ता सर्वोपरि है। उनका मुख्य नुक्ता— ‘जिये हुए अनुभव’, ‘जलने की पीड़ा राख ही जानती है’, तथा ‘उ का जाने पीर पराई जाके पैर न फटी बिवाई’ है। वास्तव में यह यथार्थ है राख ही जानती है जलने की पीड़ा। और वही व्यक्ति जिसके पैर में विवाई फटती है, उसकी पीड़ा को वही जान सकता है। दूसरा व्यक्ति केवल उसके पीड़ा और दर्द को सुनकर, देखकर केवल महसूस कर सकता है और सहानुभूति प्रकट कर सकता है। इसी सन्दर्भ में डॉ. चमनलाल का वक्तव्य है कि— “दलित साहित्य की अवधारणा या इसके व्यवहारिक रूप में यह तो सही है कि दलित जीवन की प्रमाणिक अभिव्यक्ति वह लेखक कर सकता है जिसे इसका निकट अनुभव प्राप्त हो। यह भी सच है कि जिसकी बिवाई फटी होता

• हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म. प्र.

है उसी को उसकी पीड़ा भी अधिक अनुभव होती है। लेकिन जो डॉक्टर फटी बिवाई का इलाज करता है, उसे फटी बिवाई की पीड़ा का स्वयं अनुभव हो भी यह जरूरी नहीं है। कम से कम इलाज करते समय उसकी भी बिवाई फटी हो यह जरूरी नहीं है। वास्तव में दलित साहित्य की अवधारणा एक अत्यन्त व्यापक अवधारणा है, जिसे जातिगत दायरों में सीमित करना एक तरीके से इस साहित्य धारा के मित्रों को व इस धारा को वस्तुगत रूप से नुकसान पहुंचाना ही ठहरता है।³ अगर कहा जाए तो एक तरफ दलितों द्वारा भोगा हुआ यथार्थ और अनुभूति की प्रामाणिकता और दूसरी तरफ अनुभव और सहानुभूति की दृष्टि मौजूद है। यहाँ पर रोगी और मरीज का उदाहरण दिया गया है। डॉक्टर कितना भी ईमानदारी से रोगी का ईलाज करे लेकिन उसकी पीड़ा का एहसास एक रोगी की तरह नहीं हो सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में अजय नावरिया सवाल उठाते हैं कि – “यदि एक जन्मना दलित ब्राह्मणवादी सोच और विचारधारा के अनुरूप लेखन करता है और गैर दलित ब्राह्मणवादी सोच और विचारधारा के अनुरूप लेखन करता है और गैर दलित ब्राह्मणवादी संस्कार और वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध लिखता है, तो दलित साहित्यकार किसे माना जाना चाहिए? किसके साहित्य को दलित साहित्य की परिधि में शुमार होना चाहिए?”⁴ इसी सन्दर्भ में प्रो. रामकली सराफ ने स्वानुभूति बनाम सहानुभूति को लेकर कहते हैं कि— “गैर दलित लेखकों ने सहानुभूति के तहत दलित जीवन के गहरे इन्वाल्वमेंट के साथ दलितों के पक्ष में जो लिखा उसकी अहमियत परखनी पड़ेगी। चाहे वह प्रेमचन्द हो, निराला, या नागार्जुन यदि कहीं दलित द्वारा लिखा गया कुछ व्यवस्था के पक्ष में खड़ा है उसे तबज्जों इसलिए मिले कि दलित ने लिखा है, तो स्थितियों उलटवार ही बनेगी। गुणवत्ता के आधार पर मूल्यांकन होना चाहिए साहित्य जाति धर्म के दायरों को निर्मित नहीं करना इन्हें तोड़ना है।”⁵ दलित लेखक प्रो. तुलसीराम का मान्यता है कि— “ब्राह्मणवाद को संपोषित करना वाला कोई भी साहित्य दलित साहित्य नहीं है, चाहे उसका लेखक दलित हो या गैर दलित।”⁶

अधिकांश दलित लेखक दलित साहित्य को तर्क की कसौटी पर कसने के बाद ही दलित साहित्य की संज्ञा देते हैं। गैर दलित लेखक भी दलित साहित्य लिखे हैं, और लिख रहे हैं। लेकिन उनकी लेखनी में दलित साहित्यकारों का मानना है कि वे दलित जीवन के सच्चाई को जानते ही नहीं हैं लिखेंगे क्या? साथ ही वह ब्राह्म्य चित्रण होगा। और करुणा और सहानुभूति ही होगा। यहाँ पर दलित लेखक गैर दलित लेखन को खारिज करते हैं। दलित स्वयं दलित साहित्य लिखता है तो वह अपने भोगे हुए यथार्थ को बयां करता है। वह अपनी अस्मिता, शोषण, अधिकार के प्रति चिन्तन करता है। दलित साहित्य मनुष्यता एवं संवेदना से जुड़ी हुई है। दलित साहित्य में आत्मकथाओं बहुत मात्रा में लिखी गई। दलित आत्मकथाओं को पढ़ने के बाद आम आदमी भी को झकझोर देती है। लेकिन गैर दलित लेखकों ने यह भी कहा है कि दलित स्वयं अपनी घर एवं जीवन की परिस्थितियों यानी घर की कमजोरियों को उजागर कर स्वयं बेजज्ज हो रहे हैं। लेकिन आत्मकथा लिखना तो एक साहस एवं संघर्ष की बात है। तो यहाँ बेजज्ज का सवाल ही नहीं उठना चाहिए।

दलित लेखकों का मानना है कि एक गैर दलित दलितों की पीड़ा एवं अस्मिता को परिभाषित करें यह सहानुभूति उन्हें स्वीकार नहीं। उनके दर्द और पीड़ा को कोई गैर दलित

व्यक्त नहीं कर सकता वह तो केवल उसे अनुभूत करने वाले दलित ही कर सकता है। आगे नामवर का वक्तव्य है कि—“कोई लेखक दलित कुल में जन्म से ही दलित चेतना का संवाहक नहीं हो सकता है.... जन्मना दलित ही दलित चेतना का प्रतिनिधि होगा, दूसरा कोई नहीं, गलत है।”⁷ अगर देखा जाए तो हिन्दी के आलोचकों, विद्वानों, समालोचकों की दलित साहित्य के प्रति यही स्थिति रही है। उनका हमेशा विरोधाभास बना रहता है। दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पुस्तक—दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र में लिखते हैं कि — “कई विद्वानों, रचनाकारों, आलोचकों का मत है कि दलितों पर लिखने के लिए दलित होना जरूरी नहीं है। उनका तर्क है कि घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है। लेकिन दलित लेखक इस तर्क से सहमत नहीं हैं। घोड़े की पीड़ा को समझे बगैर, उसका बाह्य—चित्रण उसकी भावनाओं का काल्पनिक रेखांकन भर ही होगा।”⁸ ओमप्रकाश वाल्मीकि उत्तर देते हैं कि थका—माँदा, भूखा—प्यासा घोड़ा अपने मालिक के प्रति क्या भाव रखता है, इसे सिर्फ घोड़ा ही बता सकता है। वास्तव जिस प्रकार एक स्त्री को प्रसव पीड़ा के समय दर्द होता है, उसकी पीड़ा एक स्त्री ही जान सकती है, पुरुष नहीं। पुरुष तो केवल देखकर या सुनकर करुणा एवं सहानुभूति प्रकट करता है। उसे स्वानुभूति नहीं हो सकता है। उसी प्रकार दलितों का अपना मापदण्ड होता है, अपना इतिहास एवं विचारधारा होती है। उनकी अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि संघर्ष होता है वे इन्हें मापदण्डों के आधार पर लेखन करते हैं। उनका अपना साहित्य सहानुभूति न लेकर स्वानुभूति पर आधारित होता है। जहाँ तक स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न है, वह दलितों के वाजिब सवाल की लड़ाई का है। हमेशा इस बात पर ज़िह्न होती है कि गैर दलितों के लिखे साहित्य को दलित साहित्य के अन्तर्गत माना जाए या नहीं? प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, इत्यादि गैर दलित लेखकों ने दलित को केन्द्रित कर उनकी सहानुभूति को प्रकट किया गया है। दलित लेखकों ने गैर दलितों के लिखा गया दलित साहित्य को अपने आन्दोलन का हिस्सा ही नहीं मानते हैं। गैर दलितों द्वारा लिखा गया दलित साहित्य में फर्क करते हैं। वे सहानुभूति रखने वाला साहित्य न मानकर वह भुक्त भोगी साहित्य को दलित साहित्य की संज्ञा देते हैं। दलित साहित्य में सहानुभूति बनाम स्वानुभूति का द्वन्द्व वाजिब है क्योंकि गैर दलित लेखकों ने दलित साहित्य प्रेमचन्द पूर्व से लेकर प्रेमचन्दोत्तर तक दलित लेखन खूब हुआ। जिसमें प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, कमलेश्वर इत्यादि लेखकों दलित विषयक केन्द्रित कर उपन्यास, कहानी लिखें। लेकिन गैर दलित के कथा साहित्य में दलित पात्र बहुत कम ही मुख्य पात्र के रूप में दिखाया गया है। अगर उन्हें दिखाया भी गया तो लाचार, बेसहारा, कमजोर, मंद बुद्धि, डरपोक, निकम्मा इत्यादि कुविशेषणों से लबालब रखा गया है। अगर साहित्य की भाषा में कहा जाए तो अधिकतर दलित नायक/नायिका को समझौतावादी एवं पलायनवादी रूख के साथ प्रस्तुत करते हैं। गैर दलित लेखक अछूतों, शोषितों, भंगियों एवं गरीबों के प्रति सवाल ही खड़ा किये हैं। समाधान नहीं। उनके साथ सहानुभूति ही प्रकट किये हैं। हरिनारायण ठाकुर अपनी पुस्तक दलित साहित्य का समाजशास्त्र में लिखते हैं कि—“हमारी राय में आज के सन्दर्भ में प्रेमचन्द और निराला की दलित रचना को भले ही खारिज कर दिया जाये, प्रेमचन्द के समय और समाज के लिए थे बिल्कुल यथार्थ परक और प्रासंगिक हैं। यदि

अम्बेडकर दर्शन की 22 संहिताओं के आधार पर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, तो इस कसौटी पर अनेक दलित साहित्यकारों की रचनाएँ भी खारिज हो जायेंगी। सच तो यह है कि गैर दलित रचनाकार 'आत्मकथा' को छोड़कर सभी साहित्यिक विधाओं में दलित साहित्य को सहानुभूति का साहित्य कहा जा सकता है, स्वानुभूति का नहीं।⁹ इस प्रकार हरिनारायण ठाकुर दलित साहित्य पर सवाल खड़ा करते हैं। वे अम्बेडकर रचनावली को आधार बिन्दु बनाकर। वर्तमान समय में दलित लेखन गैर दलितों की सहानुभूति पसंद नहीं करती है। क्योंकि अगर गैर दलित लेखक दलितों पर दया एवं सहानुभूति दिखाना था तो पहले कहाँ थे। उनकी समस्याओं, अस्मिताओं, अधिकारों को भलि-भाँति क्यों नहीं उठाया गया। जाहिर सी बात है कि उन्हें इन समस्याओं से कोई दिलचस्पी नहीं थी। अगर कहीं भी दलितों के पक्ष में लिखते हैं तो कहीं न कहीं उनका स्वयं का लाभ होगा। इसलिए लिखते हैं। जब स्वयं दलित लेखकों ने दलित साहित्य का लेखन करने लगा। तब उन्हें दलित साहित्य की याद आयी। सहानुभूति बनाम स्वानुभूति के सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता का मानना है कि—“गैर दलित भी संवेदना और सहानुभूति से दलितों के लिए साहित्य लिखे, तो कौन मना करता है उन्हें? पर यह उनका अनुभव—जन्य साहित्य प्रामाणिक दलित साहित्य नहीं माना जा सकता। इसे उनके महसूस करने की, उनके अहसासों को अभिव्यक्ति माना जा सकता है, सहानुभूति का साहित्य कहा जा सकता है।”¹⁰ रमणिका गुप्ता दलित साहित्य गैर दलित लेखकों को लिखनी के लिए कहती। लेकिन उनका जो लेखन होगा वह अनुभव जन्य पर आधारित होगा। केवल वह सहानुभूति का साहित्य माना जायेगा।

दलितों का अपना सौन्दर्यशास्त्र है। उनका अपना जीवन मूल्य है। जिस पर दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र निर्भर है। उनका अपना दर्शन है जो डॉ. अम्बेडकर का जीवन संघर्ष एवं ज्योतिषा, फुले और बुद्ध दर्शन पर आधारित है। दलित लेखकों ने डॉ. अम्बेडकर को अपना शक्तिपुंज मानते हैं। ऐसा शक्तिपुंज जिससे समूचा दलित लेखन वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करता है। दलित लेखकों ने समता, स्वतंत्रता, बन्धुत अधिकार के प्रति अभिव्यक्ति है। इसलिए दलित जब लेखन करता है तो वे दलित सौन्दर्यशास्त्र एवं दलित दर्शन, जीवन मूल्य तथा अधिकार को विषयक बनाकर अपना रचना करेगा। वह स्वयं इन सभी अधिकार के प्रति भोक्ता भी होता है। लेकिन स्वानुभूति और सहानुभूति का जो दलित साहित्यकारों मुद्दा उठा वह दलित लेखन में गैर दलित लेखकों को खदेड़ने के लिए दलित विचारकों ने स्वानुभूति और सहानुभूति का हथियार बनाया है, यह कहा जा सकता है।

दलितों को वेदना और प्रताड़ना जैसे विरासत में मिली हो। गैर दलित उस वेदना और प्रताड़ना को कैसी समझ सकता है। इसलिए उनका जो लेखन होगा वह सहानुभूति का होगा। दलित लेखकों का मन्तव्य है कि अगर मेरे पास स्वानुभूतिक रूप में मूलप्रति उपलब्ध है तो फोटोकापी की क्या जरूरत है। इसी परिप्रेक्ष्य में दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय का मत है कि—“प्रेमचन्द, निराला जैसे रचनाकारों को दलितों में सहानुभूति रखने वाले रचनाकार की कोटि में रखकर उन्हें खारिज करते हुए सहानुभूति को दलित आन्दोलन के अनुपयोगी बताया है—“.....अकेले सहानुभूति से काम नहीं चलता क्योंकि सहानुभूति के पात्र विद्रोह नहीं करते। वे

लाचारी और मजबूरी में जीते हैं तब ऐसे साहित्य की आज के सन्दर्भ में क्या उपयोगिता है। यह एक महत्वपूर्ण सवाल सभी साहित्यकार के समाने खड़ा है।¹¹ जब कोई भी साहित्यकार जब सृजन करता है तब सब कुछ खुद भोगा हो ऐसा नहीं वह अपनी सर्जना में कई ऐसा मुद्दों का समावेश करता है जो महज उनकी अनुभव और कल्पना की उपज है। सहानुभूति और स्वानुभूति के सवाल को लेकर उमा शंकर चौधरी पाश्चात्य विचारक प्लेटो, अरास्तु के दर्शन के हवाला देते हुए, वे हालीवुड के कई फिल्मों का उदाहरण देते हैं। उसमें बहुचर्चित फिल्म 'टाईटैनिक' जिसे ग्यारह आस्कर अवार्ड ने नवाजा गया था, वे आगे कहते हैं कि— "यह एक सच्ची घटना पर आधारित है। टाईटैनिक नामक जहाज का डूबना और ढेरों यात्रियों का मारा जाना एक मर्मांतक घटना है। फिल्म की सफलता के पीछे कारण यह दिया जाता है कि निर्देशक ने फिल्म में 'ऑरिजनलिटी' का बहुत ही ध्यान रखा। यहाँ तक कि फिल्म में जहाज की फिनिशिंग से लेकर उसी कंपनी के कप-प्लेट-कालीन तक का इस्तेमाल किया गया है जो वास्तविक जहाज के थे। जहाज, जो कि एक आइसबर्ग से टकरा जाता है, रिसते हुए पानी के कारण डूब जाता है।"¹² वास्तव में उस फिल्म की गुणवत्ता यह थी कि हॉल में बैठे हर दर्शक के मन में एक आह पैदा हो जाती है कि काश यह जहाज किसी भी प्रकार से डूबने से बच जाती। देखा जाय तो निर्देशक की यह जबरदस्त सफलता है कि वर्षों पहले डूबी जहाज की त्रासदी आज भी दर्शकों के दिल-दिमाग में उतार लेता है। चौधरी आगे कहते हैं कि— "जबकि निर्देशक की यह स्वानुभूति नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि ना ही वह उस डूबते जहाज का सवारी था और न ही उसने उस जहाज को देखा था। यह फिल्म जो मात्र फिल्मकारों की कल्पना की उपज है।"¹³ इस प्रकार लेखक कई फ़िल्मों का उदाहरण देते हैं कि कुछ निर्देशक तो बिल्कुल हु ब हू वेदना प्रकट करते हैं। निर्देशक का स्वानुभूति न होने के बावजूद दर्शक के दिल दिमाग में आह अर्थात वेदना किसी घटना की यथार्थ प्रकट कर देते हैं। लेकिन कुछ निर्देशक इतनी उत्कृष्टता नहीं प्राप्त कर पाते तो उनकी व्यक्तिगत कमजोरी होती है। लेखक इसी बावत् आगे कहते हैं कि— "प्रेमचन्द के समक्ष गोदान लिखते वक्त किसी होरी की साक्षात् छवि थी या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना स्पष्ट है कि होरी, खुद प्रेमचन्द नहीं थे। इसलिए यह निस्संदेह सहानुभूति का मसला है स्वानुभूति का नहीं। लेकिन आज जब भी हम 'गोदान' पढ़ते हैं तब औपनिवेशिक भारत के उस शोषक समाज और होरी की वेदना को हम अन्दर तक महसूस करते हैं। वहीं अभी हाल ही में प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक गुलजार निर्मित और निर्देशित फिल्म 'गोदान', जिसका कि प्रसारण दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर किया गया, लोगों को उस तरह आकृष्ट कर पाने में सफल नहीं हो पाई। लगभग 6-7 घंटे के उस लंबी फिल्म में दर्शक कहीं भी होरी की वेदना को उस तल्खी के साथ महसूस नहीं कर पाए।

• इस परिप्रेक्ष्य में लेखक कहता है कि मेरा मानना यह है कि एक सर्जक अच्छा या बुरा हो सकता है। लेकिन वह सिर्फ इसलिए उत्कृष्ट कदापि नहीं हो सकती है कि उसका वह सर्जन स्वानुभूति है। और दूसरा निकृष्ट भी इसलिए नहीं हो सकता है कि उसके उस सर्जन के विषय का संबंध सहानुभूति से है। किसी भी रचना में जितना महत्व कथ्य का होता है उतना भाषा एवं शिल्प का भी होता है। शिल्प में भाषा अहम मानी जाती है। भाषा साहित्य की वह प्राणवती

शक्ति है जिसके द्वार स्वआकार अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देता है। भाषा की मतभेद भी स्वानुभूति एवं सहानुभूति के स्तर पर लागू होता है। जिस आक्रोश में दलित अपने अनुभव को उद्घाटित करता है, गैर दलित उसमें करने में असमर्थ पाया जाता है हर अनुभूतिगत सच्चाई की एक भाषा भी होती है जिसके वही समझ सकता है।

कई गैर दलित लेखक, आलोचक, समीक्षक दलित लेखकों पर यह आरोप भी लगाते हैं कि उनकी भाषा और शिल्प ठीक नहीं है। वास्तव में दलित लेखक अपने दर्द को बयां करने हेतु साहित्यकार तो नहीं बन सकते हैं क्योंकि साहित्यकार बनने की कुछ अपनी भी शर्तें हैं इसके स्तर कि वह दलित है। दलित लेखक वह अपनी टूटी-फूटी भाषा में अपनी दर्द एवं वेदना को अभिव्यक्ति करता है तो इतना ही कम है। उनकी टूटी-फूटी भाषा में ही सौन्दर्य है। उनकी रचना संघर्ष से भरी होती है। इस प्रकार स्वानुभूति बनाम सहानुभूति को लेकर दलितों लेखकों को कई समस्याओं से जूझना पड़ता है। दलितों के जीवन के वास्तविक अनुभव और उनकी अभिव्यक्ति के प्रसंग में ज्योतिबाफुले ने कहा है कि – गुलामी की यातना को जो सह सकता है वह वहीं जानता है और जो जानता है वह पूरा सच कह सकता है।

निष्कर्षतः दोनों वर्गों के विचारों और साहित्य की मूल संवेदना को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि साहित्य, रचना और आलोचना को जाति, धर्म, लिंग, वर्ग, वर्ण में विभाजित करके नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से साहित्य का सहित का भाव ही विखंडित जो जायेगा फिर हम इस तरह से विभाजन में विभाजन करते ही रहेंगे। परन्तु दलित साहित्य का जो मूल मंतव्य है उसको ध्यान में रखना रचना करना चाहिए। दलित लेखकों ने दलित अस्मिता, वेदना, संघर्ष, परिश्रम, चेतना विभिन्न पहलुओं से उपजा हुआ साहित्य होना चाहिए। यही मूलप्रयोजन व उद्देश्य पर बल देना चाहिए। जिससे दलित चेतना और साहित्य संसार का फलक विस्तृत व्यापक और समृद्ध हो सके। मेरा मानना है कि दलित साहित्य को भी साहित्य की मुख्य धारा में ही रखकर पढ़ना चाहिए ताकि हिन्दी साहित्य हमारी और समृद्धि हो सके। क्योंकि ऐसा होने पर ही हम वैश्विक पटल पर प्रतिस्पर्धा में आगे निकल सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कँवलभारती – दलित साहित्य की अवधारणा, बोधिसत्व प्रकाशन रामपुर (उ.प्र.) सं. 2006, पृ. 16
2. शिव कुमार मिश्र– दलित लेखन : विपयित विमर्श की दिक्कतें, कथाक्रम : दलित विशेषांक, 9, 2000, पृ. 41
3. ओम प्रकाश वाल्मीकि– दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशक, नई दिल्ली, सं. 2001, पृ. 43
4. अजय नावरिया – दलित साहित्य की प्रमाणिकता का प्रश्न वसुधा, अंक 58, जुलाई–सितम्बर 2003, पृ. 293

5. सर्वेश कुमार मौर्य— यथार्थवाद और हिन्दी दलित साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं० 2012, पृ. 127
6. कँवलभारती — दलित साहित्य की अवधारणा, बोधिसत्त्व प्रकाशन, रामपुर (उ.प्र.) सं. 2006, पृ. 31
7. ओम प्रकाश वाल्मीकि— दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशक, नई दिल्ली, सं. 2001, पृ. 38
8. वही, पृ. 36
9. हरिनारायण ठाकुर — दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2009, पृ. 70
10. रमणिका गुप्ता— दलित हस्तक्षेप, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 19
11. मोहनदास नैमिशराय — दलित साहित्य : सही जगह की तलाश परिसंवाद, कल के लिए, सं. जयनारायण, दिसम्बर 1998, पृ. 62
12. सं. उमाशंकर चौधरी— हाशिये की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 305
13. वही, पृ. 305
14. उमाशंकर चौधरी — हाशिये की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 304